आयुर्वेद का वेदत्व

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

भारतीय परम्परा के अनुसार वेद ज्ञान-विज्ञानके भण्डार हैं और विश्व में इनसे प्राचीन कोई साहित्य नहीं है। समस्त भारतीय वाङ्मय में वेदों का पूज्य एवं पवित्र स्थान है। आयुर्वेद भी शाश्वत, पुण्यतम और अभ्युदय तथा निःश्रेयसप्रद वेदांग है। यह आयुर्वेद-विज्ञान, जो कि अनादिकाल से चलता चला आ रहा है वेद का ही उपवेद या उपाङ्ग है। चरक एवं सुश्रुत की संहिताएँ आयुर्वेद के आकरग्रन्थ रूप में समावृत हैं। अथर्ववेद में आयुर्वेदीय विषयों का बाहुल्य है । यद्यपि अन्य वेदों में भी आयुर्वेद के विषय मिलते हैं, तथापि अथर्ववेद में प्रचुर मात्रा में आयुर्वेद के विषय पाये जाते हैं। इसलिए आयुर्वेद को अथर्ववेद का ही उपवेद माना जाता है।

आयुर्वेद संज्ञक वेद वेदविद् विद्वानों द्वारा सम्मानित पुण्यतम वेद है। चरकसंहिता में बताया गया है कि अन्य वेद केवल परलोक हितकर हैं, जबकि आयुर्वेद दोनों लोकों के लिए हितकर है, इसलिए आयुर्वेद 'पुण्यतम वेद' कहा गया है-

"तस्यायुषो पुण्यतमो वेदो वेदविदां मतः।
वक्ष्यते यन्मनुष्याणां लोकयोरुभयोर्हतम्"।।

काश्यप ने युक्तियुक्त ढंग से आयुर्वेद को पञ्चम वेद माना है। इस सम्बन्ध में ब्रह्मवैवर्त पुराण में बड़ा उपयोगी वर्णन प्राप्त होता है। वहाँ कहा गया है-"समस्त मङ्गलों के भी मङ्गलकारी बीजरूप उन सनातन परमेश्वर ने मङ्गल के आधारभूत चार वेदों को प्रकट किया। उनके नाम हैं-ऋग्, यजु, साम और अथर्व। उन वेदों को देखकर और उनके अर्थों का विचार करके प्रजापति ने आयर्वेद की रचना की। इस प्रकार पाँचवें वेद की रचना करके परमेश्वर ने सूर्य को प्रदान किया और भास्कर ने उससे एक स्वतन्त्र

संहिता की रचना की। अनन्तर उन्होंने अपनी आयुर्वेदसंहिता अपने शिष्यों को पढ़ायी और उन्हें सौंप दी-

“स ईशश्चतुरो वेदान्ससृजे मङ्गलालयान्।
सर्वमङ्गलमङ्गल्यबीजरूपः सनातनः।।
ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यान्दृष्ट्वा वेदान्प्रजापतिः।
विचिन्त्य तेषामर्थं चैवाऽऽयुर्वेदं चकार सः।
कृत्वा तु पञ्चमं वेदं भास्कराय ददौ विभुः।।
स्वतन्त्रसंहितां तस्माद्भास्करश्च चकार सः।
भास्करश्च स्वशिष्येभ्य आयुर्वेदं स्वसंहिताम्।।
प्रददौ पाठयामास ते चक्रुः संहितास्ततः”।

चरक आदि संहिता ग्रन्थों में आयुर्वेद के अष्टाङ्ग विभागानुसार वर्णन देखने को मिलते हैं, परंतु इसके बहुत पूर्व वेदों में तीन प्रकार के कष्टों या दुःखों के उपचार के लिये तीन ही प्रकार के प्रतिकार या उपाय (आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक) किये जाते थे। अष्टाङ्ग- आयुर्वेद का सर्वप्रथम नामकरण किसने किया, यह कहना दुष्कर है। प्राक्कालमें या संहिताकालमें अष्टाङ्ग आयुर्वेद के पृथक्-पृथक् अङ्ग के विशेषज्ञोंका बाहुल्य था। जैसे महर्षि काश्यप कौमारभृत्य और अगदतन्त्रके विशिष्ट आचार्य थे, इसी प्रकार शल्यतन्त्र के भासुकि, कायचिकित्सा के भारद्वाज और गार्ग्य, गालव, जनक, निमि आदि शालाक्य-तन्त्रके ज्ञाता थे।

ऋक्, यजु और सामवेद के अतिरिक्त अथर्ववेद में अष्टाङ्ग-आयुर्वेद की सामग्री प्रचुररूप में पायी जाती है। अथर्ववेद के अभिचार मन्त्रों में आगत सामग्री का विशद वर्णन छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार भूतविद्याप्रसंग में मिलता है। अथर्ववेद में अष्टाङ्ग के विषय यत्र-तत्र बिखरे हुए दृष्टिगोचर होते हैं-

(१) अथर्ववेद एवं अथर्वसाहित्य में शल्यतन्त्र-

यह एक आश्चर्यजनक सत्य है कि प्राचीन शल्यविशारदों की तुलना में अर्वाचीन शल्यशास्त्री अभी बहुत कुछ पीछे हैं। साधारण व्रण की चिकित्सा तथा अतिदुष्कर शल्य कर्म में प्राचीन आथर्वण

वैद्य या शल्यशास्त्री आश्चर्यकारक कर्म करते थे। अथर्ववेदमें शरीर से पृथक् हुई अस्थियों को रथ के विभिन्न अङ्गोंके सदृश जोड़कर रथ की ही तरह मनुष्य को स्वस्थ बना देनेवाला आदेश दिया गया है। मूत्राघात रोग में शर तथा शलाका आदि द्वारा मूत्र को निकालने या भेदन करनेका आदेश दिया गया है। दुःख-प्रसव तथा विकृत-प्रसवके लिये योनि-भेदन करनेका वर्णन मिलता है। कष्टसाध्य लोहिनी और कृष्णा नामक अपची को किसी विशेष शर से भेदन करने के लिये उल्लेख प्राप्त होता है। अपची को पकाने के लिये लवण का उपचार आदि शल्य-प्रक्रियाओं का वर्णन भी किया गया है। ऋग्वेद में अश्विनीकुमारों द्वारा नाना चमत्काररूप भैषज्य विषय देखे जाते हैं, जैसे दासों द्वारा अग्नि और जल में फेंकने पर, पुनः सिर एवं वक्षःस्थलके टुकड़े-टुकड़े करने पर भी जीवित दीर्घतमा ऋषिको अश्विनीकुमारों ने स्वस्थ कर दिया। कौशिक सूत्र में अथर्ववेदीय मन्त्रों के विनियोग के प्रदर्शन में अथर्ववेद के विभिन्न मन्त्रों की महिमा को दर्शाते हुए चौथे अध्याय में 'अथ भेषजानि' से प्रारम्भ करके रोगों के प्रतिकार के लिये विभिन्न मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित करके जल, औषधि आदि पिलाना तथा मार्जन, हवन आदि अनेक उपाय दिये हैं।

(२) शालाक्य तन्त्र - इस तन्त्र में ऊर्ध्वजत्रु की व्याधियाँ जैसे सिर, नेत्र, नासिका, गला आदि के रोगोंका वर्णन आता है। अथर्ववेद में सम्पूर्ण सिर के रोगों तथा कान के रोगों को दूर करने का आदेश मिलता है। इन मन्त्रों में शीर्षक्ति, शीर्षामय और शीर्षण्य- सिर के इन तीन रोगों का नामकरण मिलता है, जो पृथक्-पृथक् व्याधियाँ मालूम होती हैं। कुष्ठ नामक औषधि को शीर्षामय तथा नेत्ररोगनाशक कहा गया है। नेत्र के रोगों के सम्बन्ध में अथर्ववेद में विभिन्न साधनों पर चिकित्सा का वर्णन है, कहीं जल-चिकित्सा, कहीं आजनमणि तो कहीं जङ्गिडमणिके प्रयोग से तथा कहीं कुष्ठ औषधि तो कहीं दिव्य सुवर्ण के उपचार मिलते हैं।

(३) काय-चिकित्सा - आयुर्वेदके अष्टाङ्गों में काय चिकित्सा का वर्णन अथर्ववेद में प्रचुररूपेण देखने को मिलता है तथा इसके विनियोग कौशिक सूत्र में स्थान-स्थानपर ओषधि के रूपमें एवं उपचाररूप में देखे जाते हैं। अथर्ववेद में लगभग ज्ञात और अज्ञात तथा छोटी-बड़ी सौ व्याधियोंका वर्णन मिलता है। अथर्ववेद के नवम काण्ड के ८वें सूक्त में व्याधियों के नामकरण की एक सूची मिलती है, जिसके प्रथम

चार मन्त्रों में सिर के रोगोंका वर्णन है। ५ से लेकर ९ तक के मन्त्रों में प्रचलित व्याधियों का वर्णन किया गया है। हृदय और उदर की व्याधियों का वर्णन दस से लेकर १४ मन्त्रों में स्पष्ट वर्णित है। १५ से लेकर १७ तक के मन्त्र में पार्श्वास्थि तथा गुदास्थिका वर्णन है। १८ से २१ तक के मन्त्रों में विशल्यक, विद्रधि आदि रोगोंके नामके साथ पाद, जानु एवं श्रोणि का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद में कुछ ऐसे रोगों का वर्णन और चिकित्सा भी मिलती है, जो नीरोग होनेमें कालापेक्षी है तथा कुछ ऐसी व्याधियों का उल्लेख मिलता है, जो अल्पकालापेक्षी तथा अस्पष्ट हैं।

विशिष्ट एवं कालापेक्षी व्याधियों के नाम- तक्मन्, आस्राव, मूत्रावरोध, नाडीव्रण, जलोदर, शीर्षक्ति, कास, किलास, क्षेत्रियरोग, जायान्य (क्षय), अपचित, श्लेष्म, बलास, हरीमा और हृदयामय आदि।

क्षुद्र एवं अल्पकालिक व्याधियाँ – पलित, पापयक्ष्मा, अज्ञातयक्ष्मा, अक्षत, विसर, पृष्ठयामय, आश्रीक, विश्रोक, विशल्यक, विद्रधि, क्षिप्त, हृद्योत, जलजि, शूल, पामा, पक्षाघात, अरिष्ठ, तृष्णा, अस्थिभङ्ग, जम्भ, संहनु, अङ्गभेद, अङ्गज्वर, लोहित, शमोलुनकेश, रधिरास्राव, काहाबाह, कर्णशूल, विषूचिका तथा अप्वा आदि ।

अथर्ववेदीय साहित्य में व्याधियों के वर्गीकरण या काय-चिकित्सात्मक निदानादि दृष्टिकोण से विभाग नहीं देखे जाते, जैसा कि चरक, सुश्रुत आदि संहिताओं में वर्गीकरण देखे जाते हैं। निज और आगन्तुक व्याधियोंका पृथक्करण सूत्ररूपेण अथर्ववेद में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, परंतु अथर्ववेद के स्त्रीकर्माणि प्रकरण तथा कौशिक सूत्र के कण्डिका ३२ के २८ से २९ सूत्र में मानस रोगों का दिग्दर्शन अत्यन्त स्पष्ट है।

४-भूतविद्या- अष्टाङ्ग आयुर्वेद का एक अङ्ग भूतविद्या भी है, जिसमें गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, ग्रह आदि के आवेश से दूषित शरीर एवं मन की शान्ति के लिये कुछ कर्म जैसे- दान, पूजा आदि किये जाते हैं, यह भूतविद्या है। इसका आदि स्रोत अथर्ववेद है। चरक, सुश्रुत तथा काश्यप आदि संहिता-ग्रन्थों में पूतना या स्कन्द आदि ग्रहों को बालरोग का कारण माना गया है। आयुर्वेद ने उन्माद, अपस्मार आदि मानसिक एवं शारीरिक व्याधियोंके कारणों में भूत, प्रेत, पिशाच तथा गन्धर्व को भी एक कारण माना है।

(५) कौमारभृत्य - आयुर्वेदके अष्टाङ्ग-विभागों में कौमारभृत्य भी एक अङ्ग है। गर्भाधान, गर्भ की पुष्टि, गर्भ को रक्षा, सुखप्रसव एवं जन्मकाल के अमाङ्गलिक क्षणोंमें हानिकर प्रभाव को दूर करने के लिये अनेक मन्त्र अथर्ववेदमें मिलते हैं। अथर्ववेदमें कुछ ऐसे भी मन्त्र हैं जिनमें औषधि, मन्त्र एवं रक्षायन्त्र (ताबीज, कवच)-का प्रयोग निर्दिष्ट है और सुखप्रसवके लिये भी मन्त्रोंका बाहुल्य वहाँ उपलब्ध होता है। कौशिक सूत्रकी ३५वीं कण्डिकामें पुंसवन संस्कारके लिये उपाय बताये गये हैं।

(६) अगद-तन्त्र- अथर्ववेद में अगद-तन्त्र से सम्बन्धित विषय जैसे–स्थावर और जङ्गम-विष, सर्प, वृश्चिक, विषाक्त कीटाणु तथा विषाक्त बाण इत्यादि के विषय में अनेक मन्त्र मिलते हैं। ऋग्वेद में भी सर्पविष, वृश्चिकविष तथा विषाक्त कीटों से सम्बन्धित मन्त्र पाये जाते हैं। अथर्ववेद के एक मन्त्र के अनुसार सूर्य, अग्नि, पृथ्वी, वनस्पति तथा कन्द में यदि विष है तो उसे नष्ट करने या दूर करने का आदेश दिया गया है। अथर्ववेद में अनेक विषाक्त सर्प के नाम उपलब्ध होते हैं। विष को नष्ट करने के लिये कुछ वनस्पतियों से सम्बन्धित मन्त्र भी मिलते हैं। अथर्ववेद के चौथे काण्ड में विषाक्त घातक विष को नष्ट करनेके लिये स्पष्ट वर्णन मिलता है। अथर्ववेद के छठें काण्ड में सर्पविष की चिकित्सा के लिये जल को महत्त्वपूर्ण बताया गया है। चरक में भी चिकित्सास्थान (२३, २५) में जल से परिषेचन और अवगाहन बताया गया है। दसवें काण्ड में पैत्व (श्वेत आक), तौदी और धृताची वनस्पति का सर्पविषहर के लिये उल्लेख है। कौशिक सूत्र में सब प्रकार के विषस्तम्भ के लिये उपाय दिये गये हैं। वृश्चिकविष को नष्ट करनेका भी उल्लेख है।

(७) रसायनतन्त्र – जो औषधि रसादि धातुओं में क्षीणता न आने दे तथा व्याधियों को विनष्ट कर स्वस्थ रखे, वही रसायन है। अथर्ववेदमें ऐसे अनेक सूक्त हैं, जिनमें जल तथा इसके गुणों की प्रशंसा की गयी है तथा जल को वृद्धावस्था और व्याधि दूर करने एवं अनश्वरता पैदा करनेवाला द्रव्य बताया गया है। कुछ मन्त्रों में बताया गया है कि जल विभिन्न प्रकार के रोगों का औषध है तथा यह शारीरिक दोषों को दूर करके शरीर एवं त्वचा को सुस्थिर तथा स्वस्थ बनाता है। अथर्ववेद जल को रस मानता है तथा जलसे अक्षय बल और प्राणकी याचना करता है।

(८) वाजीकरण- अथर्ववेद में पुरुषत्व के विकास या वृद्धि के लिये अनेक मन्त्रों का उल्लेख मिलता है। कुछ मन्त्रोंमें अश्व, हस्ति, गर्दभ और वृषभ-सदृश पुरुषत्व शक्ति के अर्जन के लिये प्रार्थना की गयी है।

वेदों में विशेषकर अथर्ववेद में आयुर्वेद के विषय यत्र-तत्र बिखरे पड़े रहने के कारण अष्टाङ्ग आयुर्वेद के विभागरूपेण वर्गीकरण का अभाव परिलक्षित होता है, पर जो भी सामग्री सूत्ररूप में उपलब्ध है, उसीका उपबृंहण होता चला गया। चरक आदि संहिता-ग्रन्थों में इसका परिष्कृत रूप दिखलायी देता है। अथर्ववेदके सूत्र-ग्रन्थ कौशिक सूत्रमें अथर्ववेदीय भैषज्यसामग्री का विनियोग स्पष्टरूप से प्राप्त होता है। इस प्रकार आयुर्वेद की वेदमूलकता सर्वथा स्पष्ट है।